छुईमुई

आंडाल प्रियदर्शिनी

हिन्दी ADDA

छुईमुई

अनु, दादी को हाथ मत लगाना।

बच्ची की पीठ पर पड़ी धौल पद्मावती के तन में गहरायी से उतर गई, "कम्बख्त कितनी बार कहा है, दादी के करीब मत जाओ, उन्हें मत छुओ, उनके ऊपर मत लेटो, खोपड़ी में कुछ जाए तब न ज़िद ज़िद, तीन वर्ष की है पर ज़िद तो देखो।"

क्रोध का आवेग बच्ची के सिर पर एक घूँसे के रूप में पड़कर ही थमा। दर्द से छटपटाती अनु चीखती हुई रोने लगी। पद्मावती घबरा गईं। उनका मानना था कि बच्चों को बेतरह पीटना,घूँसा मारना आदि पाशविक कृत्य हैं। वे कहतीं, "बच्चे फूल के समान होते हैं। खुशबू बिखेरते हैं। मन को विभोर करनेवाला सुनाद होते हैं। बुजुर्गों से ज़्यादा पवित्र और शुद्ध आत्मावाले। बच्चों को देखकर ही कम से कम बुज़ुर्ग सुधर जाएँ इसीलिए इन छोटे देवताओं को ईश्वर ने धरती पर भेजा है। कौन समझता है इसे हं...।

ये देखो रेवती का भड़कता गुस्सा अनु की कैसी दुर्गति बना रहा है। पद्मावती के मन में पद्मावती के मन में दुख का आवेग उमड़ने लगा।

मेरी खातिर बेचारी कोमल जान मार खा रही है। गलती तो मेरी है न। हे भगवान!" होठों को भींचकर मुँह बंद कर रुलाई रोकते हुए उसने ईश्वर से विनती की। अनु ज़ोर से रोने में असमर्थ हिचकी लेती रही।

"हुश आवाज़ नहीं आनी चाहिए, आँख में एक बूँद आँसू न आए, ले इसे खा ले, नीचे मत गिराना, नो क्रायिंग।" रेवती बड़बड़ाई और कटोरी में दही भात और चम्मच अनु के हाथ में पकड़ा दिया। भर्राए गले और आंखों में रूलाई को भीतर ही रोकते हुए, अनु कटोरी हाथ में लेकर स्वयं ही डायनिंग टेबल के पास जा, कुर्सी खींच बैठ गई और चम्मच से भात ले बड़ी मुश्किल से खाने लगी।

बेबस लाचार आँसू बहाती पद्मावती के मन में बच्ची को गोद मे बिठा कर चिड़िया की कहानी सुनाते हुए उसके कोमल मुँह में भात डालने की इच्छा बलवती हो उठी।

आपाद मस्तक तन तड़प उठा।

- छू नहीं सकती।

- छू देंगी तो प्रलय मच जाएगा।

- ज्वालामुखी फट पड़ेगा।

- घर युद्धस्थल में बदल जाएगा।

क्या करूँ? क्या करूँ? पद्मावती कर ही क्या सकती थी? अनु ने खाना खत्म कर लिया। सिंक में कटोरी डाल, हाथ मुँह धो लिया। "गो टू बेड अनु, स्लीप।" रेवती का आदेश सुनाई पड़ा।

अनु बैठक में एक कोने में लुढ़क गई और बैठक के अन्तिम छोर पर बने छोटे कमरे में बैठी दादी को तरसाती निगाहों से निहारती रही।

अनु के लिए तो दादी ही सब कुछ थी।

सुबह आँखे खुलते ही ...

"दादी, अनु जग गई हैं -..।" भोर की उजली मुस्कान सहित कहती।

"दाँत साफ़ कर दो दादी मुँह कुल्ला करा दो दादी..."

"खाना खि...ला दो दादी..."

"गोद में बिठा लो दादी।"

इस प्रकार दादी की छाया बन उनसे चिपकी रहती थी। सोते समय तो दादी का साथ उसे अवश्य ही चाहिए था।

दादी की नरम गोद में लेटी हुई... उनकी उँगली थामे... एक ओर करवट ले "गाना सुनाओ दादी...।" कहकर गाना सुनते हुए पल भर में सो जाती। ऐसा सबकुछ पहले होता था। अब नहीं होता । अब तो, पद्मावती को उस छोटे कमरे से बाहर आने की इजाज़त नहीं थी और अनु को भीतर जाने की मनाही थी।

उस कमरे के बाहर भी किवाड़ था। बाहर निकलना हो तो वहीं से जाना पड़ता। कमरे में ही गुसलखाना, स्नानगृह, खाने की प्लेट, कॉफी के लिए गिलास, पानी का नल, दरी, तकिया, चादर,छोटा रेडियो और पोर्टेबल टी. वी. लगा दिया था।

उस कमरे का किवाड़ बाहर सिटआऊट में खुलता था। अपने कपड़े खुद धोकर सुखाने पड़ते थे। स्टूल पर बैठे सड़क की चहल-पहल देख सकती थी। जो चाहे करने की आज़ादी थी। परन्तु कमरे से बाहर निकल इस तरफ़ आने पर प्रतिबंध था। सुबह से लेकर रात सोने तक यह आठ फीट लम्बा कमरा ही सब कुछ था।

केवल घर ही नहीं, परन्तु जीवन भी कारागार बन गया था। महरी भी कमरा झाड़ने पोंछने नहीं आती थी। बाहर के किसी व्यक्ति को देखे बिना महींनों गुज़र जाते। मानव-स्पर्श के लिए तरसते हुए कई दिन बीत जाते, अब तो स्पर्श की अनुभूति ही मिट-सी गई थी।

छप... छप... छप... अनु के अंगुठा चूसने की आवाज़ कानों में पड़ी। पद्मावती का मन भर आया। मन हुआ कि जा कर उस नारियल के पौधे को गोद में सुलाकर उसके कटे छोटे बाल सहला दूँ। रोएँ समान कोमल एड़ियों को गोद में रख धीरे-धीरे सहला दूँ, उस कोमल लता को भींच कर सोने का मन चाहा पर... पर यह कैसे संभव होता? लगा दु:ख से छाती फट जाएगी और पद्मावती वेदना से छटपटाने लगी।

"मेरी पोती है अनु... मैं उसे छूना चाहती हूँ। पर उसकी छटपटाहट रेवती के कानों में नही पड़ी। स्पीकर फोन पर अमेरिका की लाईन...

"हूँ... मैं बोल रही हूँ...।"

"अनु ठीक तो है ना? माँ..."

"माँ की दयनीय स्थिति के बारे में तो मैंने लिखा था।"

"हूँ...हूँ... पढ़ा था... विश्वास ही नहीं होता...दुर्भाग्य..."

"दुर्भाग्य या कपट... बदबू आती हैं। आई कांट मॅनेज एनी मोर..." मैं उसे अब बर्दाश्त नहीं कर सकती।"

"प्लीज डार्लिंग, चार महीने में मैं आ जाऊँगा, और समस्या का हल ढूँढ़ दूँगा।""हूँ।"

"माँ है क्या? फोन उन्हें दो न?"

"चुप रहिए, कहने को कुछ नहीं है, बंद कीजिए फोन...", रेवती क्रोध से फुफकारती हुई बच्ची को गोद में लिए बेडरूम में गई और ज़ोर से किवाड़ बंद कर दिया।

दुबारा बाहर आई।

"वैसे ही मेरी कोई सहेली घर नहीं आना चाहती।" होम" में जाकर रहने को कहती हूँ तो मानती नहीं हैं, क्या आप भी चाहती हैं कि हम लोग भी यह कष्ट भुगतें?" "क्यों? यह बदला लेने की प्रवृत्ति क्यों? मैं दूसरा घर ढूँढ़ लेती हूँ आप इस घर में खुशी से रहिए, कल मैं ही चली जाती हूँ यही एक रास्ता है।" दीवारों और हवाओं को सुनाते हुए रेवती बड़बड़ाने लगी।

उसकी चिढ़ भी हाल में ही बढ़ी थी। पहले तो दोनो बड़े प्रेम से रहती थीं। "सास बहू जैसे थोड़ी रहती हैं? अपनी बेटी से भी शायद कोई इतना प्यार करता होगा।" लोग उन दोनो के बारे में ऐसा कहते थे। पता नहीं किसकी नज़र लग गई। पहले दोनों साथ-साथ घर सजाती थीं। नए नए पकवान बनाती थीं। रेवती की कायनेटिक हौण्डा पर बैठ पार्क, मंदिर, प्रदर्शनी, समुद्रतट आदि सभी स्थलों की सैर करने जातीं।

"क्लब की मीटिंग छे बजे ख़त्म होगी। वहीं रहिएगा मैं पिक अप कर लूँगी।" रेवती अपनी सास से कहती और ठीक छे बजे पहुँच भी जाती थी।

"होटल चलकर कश्मीरी नान खाएँ सासू माँ?

"हाँ, क्यों नहीं?"

"माँ मैं आइसक्रीम लूँगी।" तीनों अन्नानगर के चतुरा रूफ गार्डन जाते। बजाय जल्दी जल्दी खाना खाने के पौना घंटा बैठ आराम से खाते पीते। घर लौटने पर पैर फैला कर सुस्ताते, टी वी देखते, संगीत सुनते, कैरम खेलते, खूब मज़ा लेने के बाद बारह बजे के करीब सोने जाते।

ये बातें पिछले जनम की लगती हैं पद्मावती को अब।

छे महीने पहले शुरू हुई थी दुर्दशा की यह कहानी। नारी निकेतन की संचालिका ने उत्साहपूर्वक कहा था, "हमारा यह संगठन बहुत मशहूर हो गया है, आप लोग जानती हैं न?" हाँ, हाँ... पत्रिका में फोटो देखी थी और इसके बारे में पढ़ा भी था। जिन-जिन लोगों ने जोश में काम शुरू किया सब किसी न किसी बहाने पीछे हट गईं। परन्तु पद्मावती बोली, "कोई बात नहीं, मेरा बेटा विदेश जा रहा है, मेरे पास वक्त बहुत है मैं करूँगी, इन लोगों की मदद ईश्वर की सेवा करना होगा।"

उसने सच्ची निष्ठा से इन लोगों की सेवा की। उनका शरीर पोंछना, कपड़े बदलना, कहानी सुनाना, भय दूर भगाना, फूल काढ़ना आदि सिखाते हुए जब उनकी मदद करने लगी, तभी समस्या शुरू हुई।

आश्रम से घर लौटने पर बहू कहती, "जाइए, जाकर साबुन से अच्छी तरह नहाकर आइए, करीब आनेपर उबकाई आती हैं।"

"क्यों बेटी रेवती... मदर टेरेसा ने क्या-क्या नहीं किया... इनकी मदद करनेवालों को ईश्वर फूल समान सुरक्षा करते हैं। चिंता न कर।"

कहकर हँस देती। पर सब बेकार... सब काल्पनिक हो गया। सच तो कुछ और ही हो गया। विश्वास टूट-फूट गया।"

यह आठ फीट लम्बा कमरा उसका सब कुछ बनकर रह गया। अब जब तक उसकी अंतिम किया नहीं होती तब तक यहीं रहना है। इस तरह के ख्यालों के कारण दुख और तीव्र हो गया और इस दुख के सागर में डूबते-उतराते वे सो गई। थाली में रखा भात पड़ा-पड़ा सूख कर कड़ा हो गया।

सिट-आऊट में बैठे-बैठे बाहर का नज़ारा देख रही थी पद्मावती। सुबह की धूप, सड़क पर तेज़ी से भागती गाडियाँ... बिना रुके तेज़ रफ्तार से भागते लोग... तेज़ी से भागती भीड़। इनमें किसी को यह बीमारी लगी होगी? मेरी तरह इनका हृदय भी विदीर्ण हुआ

होगा? क्या अकेलापन के सूने सागर में ये भी मेरी तरह डूबे उतराए होंगे? पद्मावती ने सोचा।

बगल के फ्लैट में रहने वाला भी तो कोई नहीं आता। उसकी ओर देख मुसकुराते भी तो नहीं वो लोग। क्या मुसकुराने से भी कोई बीमारी फैलती हैं? पद्मावती को लगा जैसे सारा संसार सूना - - सूखा कहनेवाला और उजाड़ हो गया। मित्र-भाव मिट गया है। अकेलापन... अकेलेपन की आग, जी को भी जलकर भस्म कर रही हैं, अपना कोई नहीं हैं। चारों ओर लोगों की भीड़ है पर अपना आत्मीय कोई भी नहीं हैं... अकेलापन ही साथी है। सवेरा होते ही रेवती भी अनु को लेकर चली जाती है।

रेवती ने अनु को क्रेच में भर्ती कर दिया हैं।

"आपको उसकी देखभाल करने की ज़रूरत नहीं हैं, मैं स्वयं ही छोड़ भी आऊँगी और ले भी आऊँगी।"

एक दिन बेलगाम जुबाँ से उसने ये शब्द उच्चारित किए थे।

"मेरी बेटी के लिए आपको कुछ करने की ज़रूरत नहीं है... उसे हाथ नहीं लगाएँ बस वही काफ़ी है। आपकी शुक्रगुज़ार रहूँगी।" घाव पर शूल चुभोते से लगे रेवती के शब्द।

"बच्ची है... वह तो नासमझ हैं पर बुजुर्गों की अक्ल भी क्या मारी गई हैं? "

"बच्ची की आपको ज़रा भी परवाह होती तो क्या आप उसे छू कर बातें करती?"

नरक की आग में उन्हें भून रही थी बहू। क्या करूँ? सोचने लगी पद्मावती... अगर मैं घर से बाहर निकलकर न जाऊँ तो खुद घर छोड़ देने की धमकी दे रही हैं बहू। शायद मुझे ही चले जाना चाहिए? रेवती तो कम से कम खुश हो जाएगी। चार महीने में मेरा बेटा आ जाएगा। क्या तब तक स्थिति टाली नहीं जा सकती।"

इतने कम समय में कोहनी, घुटने, यहाँ वहाँ... हर जगह नसें फूलने लगी थी और गाँठ पड़ने लगी थी। उँगलियों के पोर सुन्न पडने लगे थे। कान का बाहरी हिस्सा फूल कर

हाथी के कान जैसा हो गया था। पद्मावती का रंग तो वैसे ही गोरा था पर इस वक्त उस पर एक विशिष्ट चमक आ गई थी। 'स्किन बायोप्सी' टेस्ट की रिपोर्ट आज आनेवाली थी। शाम तीन बजे चर्म-रोग विशेषज्ञ डॉ टराजन जी से मिलना होगा। बेकार बैठे-बैठे जब चिढ़ होने लगी तो पद्मावती डॉक्टर के पास चल पड़ी। ऊपरी मंज़िल से एक सफ़ेद मारुति कार जिसका स्टीरियो ऊँची आवाज़ में बज रहा था। कबूतर समान फिसलती हुई कार के पास आ कर रुक गई। इस संकरी गली में गाड़ियों का आना-जाना लगा रहता हैं। "अरे! यह तो मालती की गाड़ी हैं।"

"हूँ... बिलकुल उसी की हैं। गाड़ी से मालती के साथ ही महिला संघ की समस्त नारियाँ भी उतरी। शायद महिला की बैठक के लिए मुझे न्योता देने आई? उनसे मिले अरसा गुजर गया?

"मालती..." उत्सुकता भरी आवाज़ से पद्मावती ने पुकारा।

"मालती..." सिर उठा कर उपर देखा।

"घर आओ न, बात करेंगे।" "हूँ...हूँ...आऊँगी।" आवाज़ में नफ़रत की झलक थी।

"मामी, ठीक तो हो?" कोरस के रूप में आवाज़ उभरी। कई अर्थों का प्रतिरूप आवाज़...किवाड़ खोलकर इंतज़ार करना व्यर्थ गया। मक्खी-मच्छर भी नहीं फटका। ये लोग पहले झुंड में आते थे।

पद्मावती की उँगलियाँ पहले बहुत पतली थी। फूल के समान कोमल और नरम, हाथ रुई के समान थे, अब तो मुड़ने लगी थी, केवल उँगलियाँ ही नहीं वरन उसकी ज़िन्दगी भी। पद्मावती सबसे प्यार से मिलती, अपनेपन से बातें करती और आत्मीयता से पेश आती। मैं माँ हूँ, धरती के सभी लोग मेरे बच्चे हैं। उनका व्यवहार सबके साथ इसी तरह का होता था।

अरी कन्नम्मा...यह मेरी बेटी हैं? यहाँ आ बेटी... उसके गाल सहलाती और नज़र उतारती। बच्चों की मदद करते समय उन्हें कतार में बिठाकर प्यार से सहलाकर हाथ थामे पढ़ाती।

"ये बच्ची बहुत दुबली हैं, साग खिलाओ।"

"ये लड़की जल्दी ही बड़ी हो जाएगी।"

कितने लोगों का रोग उन्होंने अपने स्पर्श से दूर किया होगा।

"अरे सासू माँ, आप सब को छूती हैं, अछूत हो जाएगी।" रेवती उन्हें छेड़ती।

मानव-मानव के बीच कैसा छूत! हम जैसे ही तो हैं वे लोग भी... वही खून, माँसपेशियाँ, हड्डियाँ, सांस या भोजन, हँसते हुए वह जवाब देती।

अब वे सभी बातें हास्यास्पद हो गई हैं। सड़क पर चलो तो अन्य लोग कुछ हटकर ही चलते हैं। बस में बैठो तो कोई करीब नहीं बैठता, अब ज़िन्दगी वास्तव में बिना लोगों के ही हो गई हैं।

विलग रहना ही ज़िन्दगी बन जाएगी क्या?"

"अपने से विलग।"

"मित्रों से विलग।"

"देश से विलग।"

चुस्त जिन्दगी अब पराई-सी लगती हैं? क्या इसे ही ज़िन्दगी से उखड़ना कहते हैं? क्या यही नरक हैं? अचानक ही आजतक मन को छू सकने वाला अकेलापन का दर्द हृदय को खरोंचने लगा - -

ज़िन्दगी से कोई लगाव, कोई रुचि नहीं रह गई थी। लगता था जैसे निष्प्राण हो गई हो।

कोई नहीं था! बैठकर बातें करनेवाला, मिलकर हँसनेवाला, हालचाल पूछनेवाला, कोई नहीं...कोई भी नहीं।

अनु को छुने का मन हो रहा था। गोद में लिटाकर प्यार करने का मन हो रहा था। पूरे घर में घूमने का मन हो रहा था। सारे कमरों को छान मारने की इच्छा हो रही थी। खूब स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ बनाने का मन चाह रहा था। स्वछंद घूमने-फिरने का मन हो रहा था। स्वतंत्रता चाहिए, इच्छानुसार जीने की स्वतंत्रता... हूँ... पर यह तो असंभव हैं।

सीढियाँ उतरकर नीचे आई। बाहर कोने में खड़ी रही। साढ़े चार बज रहे थे, अनु के आने का समय हो गया था। आँखों में भरकर ले जाना चाहती थी। अनु बड़ी हो कर प्रसिद्धि प्राप्त कर लेगी, तो क्या ये लोग उसे सुचित करेंगे? दादी को पोती के लिए कुछ देने देंगे? फूल की तरह विहँसती पोती को देखने देंगे? उसका माथा चूमने देंगे? नज़र उतारने देंगे?

"दादी..."

कायनेटिक होंडा घर के सामने रुका।

"क्यों दादी, धूप में क्यों खड़ी हो?"

छोटी बच्ची के अबोध मन में उसके लिए कितनी चिन्ता... "प्यारी मुन्नी, तुझे देखने के लिए ही तो खड़ी हूँ।" कहती हुई पास जा नज़र उतारने की इच्छा हुई।

"मत छुइये इसे।" तूफ़ानी वेग से रेवती ने अनु को अपनी ओर खींच लिया।

"चलो अनु..." शेरनी की तरह रेवती गरजी।

"मैं होम में जा रही हूँ।"

"सच, सच में!" रेवती ने संतुष्ट नज़र उसकी ओर फेरी।

"उफ्... बला टली... अब जा कर चैन मिलेगा।" "अनु दादी को टाटा करो।"

"दादी कहीं बाहर जा रही हो क्या?"

"हाँ बेटी।"

"कब लौटोगी?"

"अब दादी नहीं आएगी।" रेवती की आवाज़ में खुशी हिलोरें ले रही थी। सुनते ही अनु रोने लगी।

"हूँ... दादी चलिए मुझे...तुम नहीं...मैं दादी के पास जाऊँगी।"

हाथ छुड़ाकर जब अनु भागने को उद्धत हुई तो उसने उसे कसकर पकड़ लिया। "जल्दी से जाती क्यों नहीं? तमाशा करना हैं क्या? बच्ची को रुलाना है क्या? मरने तक आपकी यह हरकतें चैन नहीं लेने देंगी!"

अब और थोड़ी भी देर रहना उनके लिए मुश्किल हो गया।

"हे भगवान! मेरी आवाज़ सुन रहे हो..."

कमरे से बाहर निकल बिल्ली की तरह पंजों पर चलने पर भी रेवती को शक हो जाता था।

"क्या आप सोफ़े पर बैठी थी। बदबू आ रही हैं।"

"रसोईघर में गई थीं... गंध आ रही हैं।"

अद्भुत ज़ंजीरें... कभी न तोड़ सकनेवाली ज़ंजीरें! " हे भगवान! अब सहा नहीं जाता...

मुझे शीघ्र बुला लो।" भगवान की मूर्ति के सामने यह करुण क्रंदन करती, अकेलेपन की नारकीय वेदना, ताली बजाकर मज़ाक बनाती। प्रेत की जिन्दगी भी इससे बेहतर होगी।

सड़क उसकी हँसी उड़ाने लगी। घर लौटने में चार बज गए। 'स्किन बायोप्सी' टेस्ट पोजिटिव था। पद्मावती निष्प्राण शरीर लिए घिसटती हुई घर आई।ऐसी सज़ा क्यों? पुत्र, बहू, पोती,समाजसेवा, जैसे छोटे से दायरे में निश्चिंत जी रही मुझे, रिश्तों की समाधि क्यों मिली? अब मैं इस घर में नहीं रह सकती। घर छोड़ने का समय आ गया हैं। परिवार से अलग होना ही पड़ेगा।

"किसी को मत छूइएगा... होम में जाना ही बेहतर होगा। इस चिट्ठी को रख लीजिये। आज ही भर्ती हो जाइए।" डॉक्टर ने भी कह दिया।

अब चलना? चलना ही होगा। मानवीय गंध... रिश्तों की गंध... पोती की गंध से दूर... यह भी तो एक सुरक्षित प्राणमय कब्र ही हैं? प्राण निकलने के बाद ज़मीन के नीचे कब...

मन विचारों के सागर में गोते लगाने लगा। बुरे-बुरे ख्याल आने लगे।

दो साडियाँ और दो ब्लाउज थैले में ठूँस लिया।। अनु की फोटो मिल जाती तो मन निश्चिंत हो जाता। फोटो तो छूने से अशुद्ध नहीं होगा न...बच्ची की फ्रॉक मिल जाती तो अच्छा रहता।

मौत के समय पोती की सुगंध मिल जाती तो उसके साथ निश्चिंत हो मौत को गले लगा लेती।

जाने से पहले काश एक बार अनु को देख पाती! छू पाती? चूम सकती, जन्म सार्थक हो जाता।

"मैं चलती हूँ, बच्ची का ख्याल रखना।" पद्मावती बिना पीछे मुड़े तेज़ी से आगे बढ़ गई।

"दादी... दा...दी, दा...दी मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। मुझे भी ले चलो दादी।" अनु की चीख बढ़ती गई।

"छी, नादान, चुप रह... दादी के पास जाएगी?"

"हूँ...!"

"तुम चुप रहो, मुझे छोड़ो, तुम गंदी हो... मुझे दादी ही चाहिए।"

माँ के हाथ से अपना हाथ ज़बरदस्ती खींचकर छुड़ा लिया अनु ने। और दौड़ती हुई सड़क पर पहुँच गई। "दादी मैं भी आ रही हूँ।"

रेवती चिल्लाई "अनु रुक जा गाड़ी आ रही हैं।"

हाथ में पकड़े थैले को झटक कर स्कूटर को स्टैंड पर खड़ा कर जब तक रेवती सड़क पर पहुँचती तब तक अनु सड़क पर दौड़ने लगी थी। उस तरफ़ से तेज़ रफ्तार से कार आ रही थी...

"दादी...अनु...दादी।"

क़रीब आते अनु के करुणामय क्रंदन को सुन कर पद्मावती मुड़ी। अनु तूफ़ानी वेग से आती कार को बिना देखें दौड़ती चली आ रही थी। स्थिति की गंभीरता समझ, झपटकर बच्ची को गेंद की तरह उठा कर उसने उछाल दिया, कार पद्मावती को रौंदती हुई तेज रफ्तार से गुज़र गई।

"अनु...अ...नु।" आसपास की हवा में पद्मावती की धीमी आवाज़ घुल गई।

"दादी।" लंगड़ाते हुए अनु वहाँ पहुँची। खून से लथपथ दादी से लिपट, "मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी दादी, मुझे भी ले चलो, दादी। दादी का चेहरा अपनी ओर मोड़कर सुबकने लगी।

कितनी तड़प और छटपटाहट थी दादी के मन में इस पोती को छूने की। उस स्पर्श की गरमाहट का अनुभव कर, निश्चिंत मुस्कान बिखर गई थी होठों पर।